प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत और मीडिया ट्रायल

डॉ स्मिता मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर, श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007

विषय प्रवेश –*मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है मीडिया समाज की राय को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मीडिया पूरे व्यूप्वाइंट को बदलने में सक्षम है। हाल ही में मीडिया अभियुक्त को पकड़वाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगा है। पिछले दो दशकों में केवल सेटेलाइट टीवी, स्थानीय एफ.एम और इंटरनेट के द्वारा मास मीडिया क्षेत्र और प्रभाव दोनों बढ़ा है। पत्रिका और समाचार-पत्र की प्रसार संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। आधुनिक प्रौद्योगिकी के साथ जहाँ दर्शक एवं पाठक संख्या में प्रचुर वृद्धि हुई, वहीं विकसित प्रौद्योगिकी के कारण सूचना संग्रह और समाचार निर्मितिभी त्वरित गति से होने लगी। मीडिया लोकप्रिय राय बनाने में नई मीडिया प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है।*

मुख्य शब्द-
प्राकृतिक न्याय
मीडिया ट्रायल
न्यायालय की अवमानना

विषय विवेचन - मीडिया की भूमिका- लोकतंत्र जनता का शासन है जिसमें विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका तीन स्तंभ है। अनुच्छेद 19 (1)(ए) में उल्लिखित वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में मीडिया या प्रेस का विकास किया। मीडिया राज्य की गतिविधियों पर दृष्टि रखता है। जागरूक सचेतक (watch dog) के रूप में कार्य करता है। मीडिया व्यवस्था में उपस्थित बुराइयों को चिंहित कर उसे प्रकाश में लाता है ताकि उस बुराई को दूर किया जा सके।

लोकतंत्र में मीडिया की शक्ति एवं महत्ता से भली-भांति परिचित है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 (1)(ए) में उल्लिखित वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में ही प्रेस की स्वतंत्रता निहित है। मुक्त, स्वतंत्र और शक्तिशाली मीडिया लोकतंत्र का आधारस्तंभ है। मीडिया केवल माध्यम भर नहीं रह गया है। मार्शल मैक्लुहान ने 1969 में 'अंडरस्टैंडिंग मीडिया' में कह दिया था कि Medium is the Massage यानी मीडिया केवल संदेश संप्रेषण का माध्यम भर नहीं रह गया। बल्कि स्वयं ही संदेश निर्मित करने लग गया है। यह कथन उन्होंने 1969 में टेलीविजन के संदर्भ में कहा था जो आज हम इसका प्रभाव देख पा रहे हैं।लाखों लोगों की विचार प्रक्रिया को प्रभावित करने की क्षमता मीडिया में है।

यह निर्विवाद है कि अभूतपूर्व मीडिया क्रांति से आम जन को अत्यंत लाभ हुआ है। यहां तक कि न्यायिक व्यवस्था नैतिक और निडर पत्रकारिता से लाभांवित भी हुई है। न्यायिक व्यवस्था मीडिया में प्रकाशित मुद्दों पर स्व संज्ञान लेती है जहाँ मानवाधिकार का उल्लंघन हो रहा है। साथ ही साथ ही यह भी सच है कि जैसे सिक्के को दो पहलू होते हैं। मीडिया की बढ़ती भूमिका और महत्व के साथ-साथ मीडिया में जवाबदेही और प्रोफेशनल रूख का विकास नहीं हुआ है। किसी भी स्थिति में सभ्य समाज में कोई भी अधिकार किसी भी स्थिति में निरंकुश या असीमित नहीं मिलता है। मीडिया स्वतंत्रता भी संवैधानिक दायरे में ही आती है। अधिक शक्तियाँ अधिक जिम्मेदारी की भी मांग करती है। इसी प्रकार संविधान उल्लिखित अनुच्छेद 19(1)(ए) में अधिकार के साथ कानून अनुपालन का कर्तव्य भी जुड़ा हुआ है।

मीडिया ट्रायल- वस्तुतः मीडिया ट्रायलमीडिया द्वारा निर्मित राय हैजो पाठक व दर्शक की राय के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।यह राय उन व्यक्तियों से संबंधित होती है जो किसी न्यायिक केस में आरोपी के तौर पर जुड़े हैं।यह केस न्यायालय के विचाराधीन होता है या फिर उस पर निर्णय हो चुका होता है। इस तरह मीडिया द्वारा निर्मित राय उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा को गहरी ठेस लगाती है।साथ ही यदि यह ट्रायल निर्णित केस से संबंधित होता है तो वह न्यायालय के निर्णय पर भी प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है। इस पूरी प्रक्रिया में मीडिया जाने-अनजाने कई तरह के अधिकारों का हनन करता है जिनमें से प्रमुख हैं-आरोपी के प्राकृतिक न्याय के हक का,न्यायालय अवमानना का,निजता के अधिकार का,मानहानि का एवं वाक् एवं अभिव्यक्ति के दुरुपयोग का।

यह सत्य है लोकतंत्र में प्रत्येक संस्थान की आलोचना का प्रावधान होना चाहिए।किन्तु हाल ही में ऐसी घटनाएँ हुई हैंजिनमें मीडिया में अदालती आदेश आने से पहले ही आरोपी का ट्रायल कर अपना निर्णय दे दिया। कुछ महत्वपूर्ण अपराधिक केस ऐसे हैं जिनमें मीडिया के कारण हैं निर्णय आया, अन्यथा आरोपी बिना सजा के छूट जाता। जैसे प्रियदर्शनी मट्टू केस, जेसिका लाल केस, नीतीश कटारा मर्डर, निर्भया बलात्कार केस आदि ।

'मीडिया ट्रायल' शब्द पिछले दशक में भारत में पत्रकारिता का हिस्सा बनता चला गया। मीडिया ट्रायल यानी जहाँ मीडिया न्यायिक मुद्दों पर अपनी खोजबीन से अपराधिक केस पर एक नजरिया प्रक्षेपित करती है। जिसके लाभ भी हुए किंतु उसकी अपनी सीमाएँ भी है। मीडिया का नजरिया एक व्यापक जनता की राय बनाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

न्यायपालिका मीडिया में आई रिपोर्ट के आधार पर कई बार स्व- संज्ञान भी लेता है और अनेक बार ऐसा भी हुआ न्यायपालिका द्वारा दिए गए निर्णयोंसे भिन्न मीडिया अपनी राय देता है। जिससे वे केस पुन: खुलते हैं और उन पर काम होता है। इससे अनेक बाद दोषी पकड़ाते हैं।लेकिन मीडिया ट्रायल एक दूसरा कोण भी है। लेकिन जब मीडिया ट्रायल करती है और न्यायालय के निर्णय से पहले ही आरोपी को दोषी बना देती है तो आरोपी के प्राकृतिक न्याय के अधिकार का हनन होता है।

प्राकृतिक न्याय की संकल्पना -इंग्लिश विधि में प्राकृतिक न्याय एक पारिभाषिक शब्द है जिसके अंतर्गत तीन सिद्धांत आते हैं जिनका उद्देश्य उस न्याय को स्थापित करना है जो प्रकृति प्रदत्त हैं। प्रकृति द्वारा निर्धारित होने के कारण यह सार्वभौमिक है। परम्परागत रूप से प्राकृतिक कानून का अर्थ मानव की प्रकृति के विश्लेषण के किए तर्क का सहारा लेते हुए इससे नैतिक व्यवहार सम्बन्धी बाध्यकारी नियम उत्पन्न करना होता था।[2]

प्राकृतिक न्याय दो लीगल मैक्सिम पर आधारित न्याय सिद्धांत है। यह अधिकार अब अधिकार देशों के न्यायिक संहिता का हिस्सा है ।

1 पक्षपात के विरुद्ध न्याय के अधिकार का नियम(*nemo judex in causa sua*)यानि कोई भी व्यक्ति अपने ही मामले में निर्णायक नहीं हो सकता (no man a **judge** in his own cause)क्योंकि यदि कोई पक्षकार स्वयं ही केस का निर्णायक भी हो तो पक्षपात रहित निर्णय आना कठिन है ।इसलिए वादी प्रतिवादी को छोड़कर तीसरा व्यक्ति ही निर्णायक होना चाहिए।

2 दूसरे पक्ष को भी सुनने के अधिकार का नियम (*audi alteram partem*)..यानि दूसरे पक्ष की भी सुने(hear the other side) । यह भी न्यायिक सिद्धांत का मूलभूत नियम है कि यदि निर्नान्य केवल एक पक्ष का ही सुनकर दे दिया जाएगा तो यह अन्याय होगा । न्याय तभी होगा जब निर्णय दोनों पक्षों को सुनने के बाद आये ।

ये सिद्धांत फेयर प्रोसेस (Fair Process) एवं ड्यू प्रोसेस (Due Process)की बात करते हैं। अर्थात प्रत्येक पक्ष को यह अधिकार है कि उसकी भी बात सुनी जाये एवं न्याय की प्रक्रिया सुचारू हो।12वीं शताब्दी तक प्रचलित King is always right के विरोध में मानव अधिकारों का मैग्ना कार्टा आया और प्राकृतिक न्याय की बात उठने लगी।

भारत के संविधान में पृथक रूप से कहीं भी प्राकृतिक न्याय का उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु भारतीय संविधान की उद्देशिका, अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को अत्यंत सशक्त रूप से रख गया है। उद्देशिका: संविधान की उद्देशिका में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार, विश्वास एवं पूजा की स्वतंत्रता शब्द शामिल हैं जो लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों में निष्पक्षता सुनिश्चित करती है।

अनुच्छेद 14: नागरिक के मौलिक अधिकारों के संरक्षण की बात करता है। इसमें कहा गया है कि भारत में प्रत्येक व्यक्ति विधि के समक्ष समान है। यह प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह नागरिक हो या विदेशी सब पर लागू होता है।

अनुच्छेद 21: वर्ष 1978 के मेनका गांधी मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के तहत व्यवस्था दी कि प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता को उचित एवं न्यायपूर्ण मामले के आधार पर रोका जा सकता है।[3] इसके प्रभाव में अनुच्छेद 21 के तहत सुरक्षा केवल यादृच्छिक कार्यवाही पर ही उपलब्ध नहीं बल्कि विधानमंडलीय क्रिया के विरुद्ध भी उपलब्ध है।

इसलिए यह विवाद बहुत अधिक जोरों पर है कि प्रेस को पूर्णता मुक्त होना चाहिए कि नहीं। एक वर्ग पूर्णतया प्रेस की निर्बाध स्वतंत्रता का पक्षधर है तो दूसरा वर्ग व्यक्ति के निजता के अधिकार को सर्वोपरि मानते हैं।
मीडिया द्वारा अत्यधिक चर्चित मामले के आरोपी का फेयर ट्रायल तो असंभव हो ही जाता है साथ ही यदि वह मामलों से छूट जाता है तो भी सम्मानपूर्वक जीवन नहीं बता पाता। लोग हमेशा उसे संदेह की दृष्टिसे देखते हैं। समाज की नज़रें हमेशा उसे घूरती रहती हैं। इसलिए ज्यादातर यह देखा गया है कि ऐसी स्थिति में व्यक्ति एवं उसका परिवार वह स्थान छोड़कर कहीं और रहने लग जाते हैं,किन्तु जहाँ व्यक्ति के पास यह विकल्प नहीं होता वहाँ उसे इन्हीं पीछा करती नज़रों के साथ ही जीवन यापन करना होता है।

न्यायिक अवमानना से तात्पर्य:

न्यायिक अवमानना अधिनियम, 1971 (Contempt of Court Act, 1971) के अनुसार, न्यायालय की अवमानना का अर्थ किसी न्यायालय की गरिमा तथा उसके अधिकारों के प्रति अनादर प्रदर्शित करना है।न्यायिक आदेशों की अवहेलना करना, उनका पालन न सुनिश्चित करना इत्यादि न्यायिक अवमानना के दायरे में आता है।न्यायिक अवमानना के प्रकार -

न्यायिक अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 2 (A) के तहत अवमानना को 'सिविल' और 'आपराधिक' अवमानना में बाँटा गया है। i)सिविल अवमानना: न्यायिक अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 2 (B) के अंतर्गत न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, आदेश, रिट, अथवा अन्य किसी प्रक्रिया की जान बूझकर की गई अवज्ञा या उल्लंघन करना न्यायालय की सिविल अवमानना कहलाता है। ii)आपराधिक अवमानना: न्यायिक अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 2 (C) के अंतर्गत न्यायालय की आपराधिक अवमानना का अर्थ न्यायालय से जुड़ी किसी ऐसी बात के प्रकाशन से है, जो लिखित, मौखिक, चिह्नित , चित्रित या किसी अन्य तरीके से न्यायालय की अवमानना करती हो। [4]

अदालत की अवमानना को सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति जगदीश सिंह केहर और न्यायमूर्ति के एस. राधाकृष्णन की खंडपीठ ने भी सुब्रत राय सहारा के मामले में समझाया था। यदि अदालत के आदेशों का पालन नहीं किया जाता है तो यह न्यायिक प्रणाली की नींव हिला देता है, जो कानून के शासन को दुर्बल करता है। अदालत इसी की संरक्षा और सम्मान करती है। देश के लोगों का न्यायिक प्रणाली में आस्था और विश्वास कायम रखने के लिए यह आवश्यक है।[5]

मीडिया रिपोर्टिंग और न्यायालय की अवमानना

न्यायालय विचाराधीन मामलों की रिपोर्टिंग के संदर्भ में प्रेस की स्वतंत्रता को प्राय: रोका जाता है। 2010 में दिखी हाई कोर्ट ने 'नेहरू मेमोरियल म्यूजियम और लाइब्रेरी बनाम एल. बालाकृष्णन 2010'[6] मामले में यह कहा था कि न्यायालय

कार्यवाही का प्रकाशन मात्र से न्यायालय की अवमानना नहीं होती है। यह न्यायालय का ही विवेक है कि यह तय करेगा कि संबंधित प्रकाशन से न्यायालय की अवमानना हुई है या नहीं। जहां प्रकाशन न्यायालय के निर्णय को प्रभावित करें।

सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक मामले की रिपोर्टिंग के दिशा-निर्देश जारी करने के संकेत दिए हैं ताकि अभियुक्त को फेयर ट्रायल का अधिकार मिल सके। देखा यह गया है कि मीडिया न्यायिक प्रक्रिया में दखल देती है जब वह अपने ऑबजर्वेशन से अभियुक्त के बारे में कोई छवि बार-बार रिपोर्टिंग में दिखाता है तो उससे जनमत तो बनया ही जाता है, साथ ही न्यायिक निर्णय की प्रक्रिया भी प्रभावित होती है।

सर्वोच्च न्यायालय की यह चिंता है कि संविधान की धारा 21 के तहत राइट टू लाइफ के अंतर्गत अभियुक्त के फेयर ट्रायल तो मिले किंतु यह भी एक चिंता है कि अनुच्छेद 19 (1) के अंतर्गत वाक् एवं अभिव्यक्ति अधिकार से भी प्रेस को वंचित न किया जाए। 2012 में सहारा इंडिया की याचिका सुनने के दौरान सर्वोच्च न्यायालय की ये चिंताए सामने आईं। सहारा इंडिया ने मीडिया के खिलाफ दायर याचिका में कहा कि सहारा इंडिया द्वारा सेबी प्रतिभूति एवं विनिमय वार्ड में दिए गए प्रयोजन की मीडिया एकतरफा रिपोर्टिंग कर रहा है जिससे कंपनी की साख पर बुरा असर पड़ रहा है।[7]न्यायमूर्ति केहर ने कहा कि मीडिया सही और गलत के बारे में लोगों में एक राय कायम कर देता है और यदि निर्णय उस अनुरूप नहीं मिलता तो न्यायधीशों की छवि खराब होती है, उसके निर्णय में निहित स्वार्थ देखे जाते हैं। जस्टिस डी.के. जैन, एसएस निज्जर, रंजना देसाई और डीएल केहर ने तथाकथित मीडिया ट्रायल पर चिंता जाहिर की।

यह भी प्रकृति पाई जा रही है कि जैसे ही अभियुक्त गिरफ्तार होता है मीडिया उसे अपराधी बना देता है। न्यायालय की कार्रवाई को भी मीडिया इसी शैली में रिपोर्ट करता है और किसी विशेष दंड की ओर न्यायिक प्रक्रिया को ढकेलता है। सहारा के वकील फली एस नरीमन ने यह कहकर हलचल मचाई कि कोर्ट किसी केस में आदेश जारी कर सकती है लेकिन सामान्य दिशा-निर्देश नहीं बना सकती। यदि बना भी सकती है तो कानून की अनुपस्थिति में कोर्ट कैसे कार्यान्वित करवा पाएगा। न्यायमूर्ति कपाड़िया ने कहा कि न्यायालय मीडिया कंटेंट को कंट्रोल करने में रूचि नहीं रखता है। लेकिन यह सच है कि मीडिया की अनेक गलत रिपोर्टिंग के लगभग 11 मामले इस अदालत में है। वकील नरीमन ने निरंतर कहा कि अदालत यह ही कर सकती। यदि दिशा-निर्देश बनाएगी तो उचित कानून की अनुपस्थिति में केवल संवाददाताओं को ही दंडित कर पाएगी। हम अपने चारो ओर दीवार नहीं बना सकते। यह क्लब नहीं है। जज की मनमर्ज़ी से संवाददाताओं को दंडित नहीं किया जा सकता। मीडिया रिपोर्टिंग से प्रभावित व्यक्ति प्रेस पर मानहानि और क्षति पूर्ति का दावा कर सकता है। लेकिन यह भी सही है कि मीडिया को भी स्वनियमन करना आना चाहिए। [8]

निष्कर्ष - आज के प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में पाठक दर्शक के ध्यानाकर्षण के लिए टी.आर.पी. रेटिंग के लिए तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति मीडिया में बढ़ती जा रही है। सूचना को सनसनी बनाने की मीडिया की प्रवृति उसकी विश्वसनीयता पर संदेह भी खड़ा करने लगी है। अपने व्यावसायिक हितों की रक्षा के लिए मीडिया दूसरे लोगों के निजता के अधिकार का उल्लंघन कर रही है। समस्या उस समय घनघोर हो जाती है जब मीडिया न्यायालय में विचाराधीन

मामलों पर पूर्वाग्रह से ग्रसित अपनी राय को प्रकाशित करती है। जोकि वादी के अधिकारों का हनन करता है। उनके फेयर ट्रॉयल के अधिकारों का हनन होता है।

कोई अधिकार निरंकुश नहीं होना चाहिए। अधिकार का प्रयोग तभी समाज के लिए सार्थक होता है जब कर्तव्यबोध के साथ उन अधिकारों का निर्वहन हो। किंतु यदि ऐसा ना हो अराजकता पैदा हो जाती है। इतिहास में तमाम ऐसे उदाहरण रहे हैं जहाँ असीमित अधिकार ने निरंकुश शक्तियों को पैदा किया। मीडिया ट्रायल से न्याय व्यवस्था में निष्पक्ष निर्णय के प्रभावित होने की आशंका बढ़ जाती है।ऐसी स्थितियों में मीडिया रिपोर्ट को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आड़ में सही नहीं ठहराया जा सकता है। यदि मीडिया स्वतः ही आत्म- चिंतन कर अपनी शक्तियों का विवेकपूर्ण प्रयोग करेगा तो वह हमेशा लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ का कार्य भली भांति कर पाएगा ,किन्तु यदि वह स्वनियमन नहीं करेगा तो उसे रेगुलेट करने हेतु बाह्य विधान बनाने पड़ेंगें ,जो न तो मीडिया के हित में होगा और न ही लोकतंत्र के ही हित में होगा।

सन्दर्भ –

1 Chapter 1,Understanding Media: The Extensions of Man by Marshall McLuhan ©1964

2https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%95%E0%A5%83%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A7%E0%A4%BF

3(**1978 AIR 597, 1978 SCR (2) 621**)

4 न्यायालय की अवमानना अधिनियम 1971

5 https://www.bhaskar.com/news/ABH-knowledge-bhaskar-5209943-NOR.html

6 'नेहरू मेमोरियल म्यूजियम और लाइब्रेरी बनाम एल. बालाकृष्णन 2010'(2010 (174) DLT 12)

7 (**Sahara India Real Estate ... vs Securities & Exch.Board Of India & ... on 11 September, 2012**)

8 (**Sahara India Real Estate ... vs Securities & Exch.Board Of India & ... on 11 September, 2012**)